भक्ति और रीति काव्य-धाराओं का संवाद और दादूपंथी सुन्दरदास की कविता

Title: Bhakti aur Riti Kavya Dharaon Ka Samvad aur Dadupanthi Sundardas ki Kavita

(A Dialogue of Bhakti and Riti Sensibilities and the Poetry of Dadupanthi Sundardas)

A Synopsis of Thesis research work
(within 5000 words)
For the Degree of
Doctor of Philosophy

by

Dalpat Singh Rajpurohit

(Registration No.: R-14RS01110006 dated 21st March, 2016)

Supervisor: Prof. Tanuja Majumdar

PRESIDENCY UNIVERSITY
KOLKATA

Prof. Tanuja Majumdar
(Signature of Supervisor)

Dalpat Singh Rajpurohit
(Signature of Candidate)

Department of Hindi
Presidency University, College Street, Kolkata
December 2017

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्ति तथा रीति को मध्यकाल की दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ माना जाता हैं। भक्ति की प्राणधारा शास्त्र के बरक्स लोक से जीवन पाती है। इस कविता में अपने आराध्य के प्रति प्रणय निवेदन में पारम्परिक संबंधों का नकार है, तत्कालीन सामन्ती समाज की रूढ़ियों को तोड़ने का आग्रह है, या यों कहें कि यह कविता देशभाषा में जन-संस्कृति और जन-सामान्य की आशाओं-आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति है। भक्ति की तुलना में रीति कविता का संबंध सदियों पुरानी काव्यशास्त्र की परम्परा से माना जाता है, इसलिए इसमें मौलिकता का अभाव माना गया है। जन-संस्कृति के स्थान पर दरबारी या अभिजात संस्कृति की पोषक यह कविता अतिशय शृंगारिक, चमत्कारपूर्ण और पंडिताई से भरी कही गई है। इस तरह भक्ति और रीति प्रवृत्तियों (या काव्य धाराओं) को इनकी संवेदना तथा प्रयोजन के आधार पर एक-दूसरे की कमोबेश विपरीत माना गया है या हिन्दी साहित्य के इतिहासग्रंथों में इन दोनों काव्य-धाराओं को इसी तरह समझाया गया है। परन्तु सवाल ये उठते हैं कि इतिहासकारों द्वारा बनाया गया यह ढाँचा क्या मध्यकाल में भी इतने ठोस रूप में उपस्थित था? जिसमें भक्तिकाल और रीतिकाल एक दूसरे के बाद आने वाली संवेदनाएँ थीं? क्या इस ढाँचे को मध्यकाल के सभी कवियों पर लागू किया जा सकता है, जिसमें किसी कवि को या तो भक्त मानें या रीति-कवि माना जाए? क्या भक्ति और

रीति प्रवृत्तियों में सर्वत्र परस्पर-विभेद (बाइनरी) की स्थिति रही है या इनमें कोई समन्वय या संवाद भी रहा है? क्या मध्यकालीन सामन्ती अभिजात वर्ग का चरित्र सदैव एक सा विलासी और जन-विरोधी रहा है या इस वर्ग ने भी कभी जन-सामान्य के जीवन, आशा-आकाक्षाओं में रुचि भी ली है और भक्ति के फैलाव में अपनी भूमिका भी निभाई है?

उपरोक्त सभी प्रश्न दादूदयाल के शिष्य सुन्दरदास (1596 से 1689 ई.) के जीवन, काव्य और उनके युग का अध्ययन करते समय उठते हैं, जिनके उत्तर इतिहासग्रंथों द्वारा बनी-बनाई समझ से परे जाकर सुन्दरदास की कविता और उनके युग से जुड़ने पर ही मिलते हैं। सुन्दरदास रीतिग्रंथों की परिपाटी पर संत-शिक्षा के लिए अपना विशाल ग्रंथ 'ज्ञान समुद्र (1653 ई.)' लिखते हैं, जिसे विद्वानों ने 'ज्ञान-धारा का रीतिग्रंथ' कहा है।[1] वे काव्यशास्त्र का भक्तिकरण करते हैं तथा धर्मशास्त्र को भक्ति संवेदना के अनुरूप ब्रजभाषा में प्रस्तुत करते हैं। काव्य की आत्मा क्या है? काव्य का प्रयोजन क्या हो? इस पर वे केशवदास जैसे रीति कवियों से जिरह करते हैं और काव्य-रचना के अलग प्रतिमान भी स्थापित करते हैं। भक्ति के लिए कैसा राज्य उचित है इसकी व्यवस्था देते हैं और स्वयं तत्कालीन साहूकार और दरबारी अभिजात वर्ग से संरक्षण पाते हैं। एक तरफ़ सुन्दरदास सन्तों-भक्तों की शैली पर लोक-ग्राह्य कविता

लिखते हैं तो दूसरी तरफ़ रीति कवियों की कवित्त-सवैया शैली अपनाते हुए चित्र-काव्य, काव्य-लक्षण, छन्दशास्त्र आदि को संतों के लिए सुलभ बनाते हैं। वे एक ओर काव्य को उनके युग में चल रहे षट्भाषा विमर्श के अनुकूल रचते हैं, वहीं दूसरी ओर भारतीत दर्शन के अपने विषद् ज्ञान को लोक-भाषा में लोक-जीवन से प्रतीक ग्रहण करके प्रस्तुत करते हैं। सुन्दरदास की कविता का यह अनोखापन न तो उनके काल में अज्ञात रहता है न ही बाद की संत परम्परा में, जो उनसे बहुत ग्रहण करती है। काव्यशास्त्र और धर्मशास्त्र की संस्कृत से चली आ रही परम्परा को ब्रजभाषा में जिस तरह सुन्दरदास प्रस्तुत करते हैं वह प्रवृत्ति बाद के 'निरंजनी संप्रदाय' और 'रामसनेही संप्रदाय' में भी दिखती है। सुन्दरदास 18वीं सदी में गुजरात में स्थापित 'ब्रजभाषा पाठशाला' में विधिवत रूप से पढ़ाए भी जाते हैं।[2] सुन्दरदास के व्यक्तित्व और कृतित्व से जुड़े इन पहलुओं पर इस शोध प्रबंध में विस्तृत प्रकाश डाला गया है। सुन्दरदास के जीवन और कविता से जुड़े साहित्यिक स्रोतों, पांडुलिपियों और शिलालेखों का ऐतिहासिक प्रविधि से अध्ययन करके उस युग को समझने का प्रयास किया गया है। सुन्दरदास को कायमख़ानी नवाबों द्वारा शासित फ़तेहपुर में मिले आश्रय, दरबारों, मठों तथा पाठशालाओं में उनकी रचनाओं के ग्रहण तथा व्यापक सामाजिक स्वीकृति का समाजशास्त्रीय अध्ययन किया गया है।[3]

'भक्ति और रीति काव्य धाराओं का संवाद और दादूपंथी सुंदरदास की कविता' शीर्षक शोध-प्रबंध छह अध्यायों में विभाजित है। पहले दो अध्यायों में हिंदी साहित्येतिहास के मध्यकाल, जिसे 'आरम्भिक आधुनिक काल' या 'पूर्व आधुनिक काल' भी कहा जाता रहा है, के ऐतिहासिक तथा सैद्धांतिक पहलुओं का अध्ययन किया गया है।[4] **प्रथम अध्याय** में 'देशज आधुनिकता की अवधारणा' पर हुए विमर्श का मूल्याँकन किया गया है तथा भारत की 'देशज आधुनिकता' में सामंती या अभिजात वर्ग की भूमिका का विशेष अध्ययन किया गया है। उत्तर भारत मे भक्ति के उदय को 'आरम्भिक आधुनिकता' या 'देशज आधुनिकता' के आगमन से जोड़ा जाता है इसलिये भक्ति के विस्तार तथा संरक्षण में राजसी अभिजात वर्ग के योगदान को समझे बिना 'आरम्भिक आधुनिकता' की अवधारणा की पूरी तस्वीर नहीं खींची जा सकती। भक्ति-काव्य, भक्तमाल और वार्ता साहित्य में वर्णित राजसी अभिजात वर्ग की भूमिका पर इस अध्याय में प्रकाश डाला गया है जिसने भक्ति के पोषण एवं संरक्षण में महत्ती भूमिका निभाई। सुन्दरदास अपने 'सर्वांगयोगप्रदीपिका' ग्रंथ में कहते हैं –

प्रथम सु धर्म देश कहुं ताकै। भलौ राज्य कछु दखल न जाकै।
तहाँ जाइ कै मठिका करई। अल्प द्वार अरु छिद्र सु भरई।।
लिप्त करै चहूँ ओर सुगंधा। कूप सहित मठ इहिं बिधि बंधा।[5]

इस पद में सुन्दरदास जिस ‘सु धर्म देश’ या ‘भले राज्य’ की बात कर रहे हैं उसका संबंध फ़तेहपुर राज्य (जहाँ सुन्दरदास वर्षों रहे) से जुड़ता है। इस अध्याय में पुराने पत्रों के माध्यम से प्रमाण सहित दिखाया गया है कि फ़तेहपुर में सुंदरदास के मठ का निर्माण वहाँ के साहूकार समुदाय की आर्थिक मदद से हुआ था। इसी तरह आमेर, ओरछा, बीकानेर तथा मारवाड़ के राजसी वर्ग द्वारा भी भक्ति व रीति काव्य को पर्याप्त संरक्षण मिला। इन रजवाड़ों के सहयोग से ही भक्ति से जुड़े स्थानों जैसे वृंदावन, गलता, नाथद्वारा आदि का विकास हुआ। व्यापार आधारित समाज को किसी देश के आधुनिकता की तरफ़ बढ़ने की पहली शर्त माना जाता है इसलिये इस अध्याय में राजस्थान के ‘ख्यात’ साहित्य का अध्ययन करके मारवाड़ राज्य में व्यापार तथा बाज़ार आधारित संस्कृति का विशेष अध्ययन किया गया है। देशभाषा डिंगल (साहित्यिक मारवाड़ी) की संस्कृति के उद्भव और विकास में राजसी अभिजात वर्ग की भूमिका पर भी इस अध्याय में प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय ‘मध्यकालीन हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन’ में हिंदी साहित्य के प्रभावशाली इतिहासकारों जार्ज ग्रियर्सन, मिश्र-बंधु, आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा हज़ारीप्रसाद द्विवेदी की मध्यकाल सम्बंधी स्थापनाओं का मूल्यांकन किया गया है। आज जिस रूप में हिन्दी साहित्य के मध्यकाल का पठन-पाठन होता है उस पर इन

इतिहासकारों का बहुत प्रभाव रहा है। इनके अलावा रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध, नामवर सिंह, मैनेजर पांडेय आदि आलोचकों के आलोचना-ग्रंथों में भक्तिकाल को लेकर हुए विमर्श का भी मूल्याँकन किया गया है। गणपतिचंद्र गुप्त के 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' व नामवर सिंह की अवधारणाओं को आगे बढ़ाते हुए इस अध्याय में यह दिखाने की कोशिश की गई है कि हमें किसी काल विशेष को चित्तवृत्तियों में बाँधकर देखने की दृष्टि से परे जाने की आवश्यकता है। क्योंकि एक ही कवि के यहाँ भक्ति-रीति आदि संवेदनाएँ पाई जा सकती हैं। इस क्रम में काव्य की विधाओं के ऐतिहासिक अध्ययन पर प्रकाश डाला गया है। काव्य की विधाओं में हुए विकास का अध्ययन करने से हमें मध्यकाल में भक्ति, रीति, वीरता, नीति आदि संवेदनाओं के परस्पर मिलन का ज्ञान होता है। साहित्यिक धाराओं के नैरन्तर्य तथा उनमें हुए नवाचारों का भी पता चलता है। विधाओं के विकास के क्रम में इस अध्याय में चरित-काव्य, रासो, सतसई और रीति ग्रंथों का अध्ययन किया गया है। विधाओं की परम्परा का ऐतिहासिक अध्ययन करने पर हमें वे संवेदनाएँ जिनके आधार पर हम किसी कवि को वीरता, भक्ति, रीति, नीति आदि संवेदना का कवि कहते हैं और काव्य को अलग-अलग कालों में बाँटते हैं, वे चित्तवृत्तियाँ अक्सर एक ही कवि और काल में मिल जाती हैं।

तृतीय अध्याय 'सुंदरदास और उनका युग' उपर्युक्त दो अध्यायों के संदर्भ में दादूपंथी सुंदरदास के जीवन और रचनाओं के अध्ययन की माँग करता है। इस अध्याय में सुंदरदास के काव्य की पांडुलिपियों के मूल्यांकन के साथ-साथ दादूपंथ तथा संपूर्ण संत-परम्परा में उनके स्थान पर भी प्रकाश डाला गया है। सुंदरदास ने जिस फ़तेहपुर राज्य में अपना अधिकांश जीवन बिताया, उसके साहित्यिक व राजनीतिक परिवेश तथा साहूकार व अभिजात वर्ग से सुंदरदास को मिले आश्रय का अध्ययन इस अध्याय में किया है। सुन्दरदास के काव्य की पांडुलिपियाँ कहाँ-कहाँ पाई जाती हैं, उन्हें कौन-कौन लिखवाते थे तथा पढ़ते थे, इसका अध्ययन भी इस अध्याय में हुआ है। सुन्दरदास की कविता की पांडुलिपियों के सर्क्युलेशन (पठन-पाठन) का औपनिवेशिक भारत में स्थापित हुए प्रकाशन भवनों द्वारा छापी गई सुन्दरदास की रचनाओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। भारत में 19वीं सदी के अंत तथा 20वीं सदी के शुरूआती दौर के प्रकाशन भवनों द्वारा सुन्दरदास की वही रचनाएँ छपी जिनमें वे एक संत प्रतीत होते हैं। इन प्रकाशनों में सुन्दरदास की उन रचनाओं को उचित स्थान नहीं मिला जिनमें वे एक आचार्य, दार्शनिक और वेदान्ती नज़र आते हैं। इसलिये इस अध्याय में प्रकाशन भवनों के आने से पहले और बाद में बनी सुन्दरदास की छवियों का विस्तृत अध्ययन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय 'निर्गुण भक्ति का काव्यशास्त्र: सुंदरदास का छंद, अलंकार और शास्त्रीय विमर्श' में सुंदरदास की कविता में काव्यशास्त्र और धर्मशास्त्र की उपस्थिति पर प्रकाश डाला गया है। सुंदरदास ने केशवदास, सुंदर कविराय जैसे रीति के प्रधान कवियों की कविता के शृंगारिक पक्ष की जो आलोचना की थी और उनके बरअक्स सन्तों के पठन-पाठन के लिए किस तरह की कविता होनी चाहिये उस पर जो विमर्श किया था उस पर इस अध्याय में विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है। सुन्दरदास ने किस तरह अलंकार-शास्त्र (विशेषकर चित्र काव्य) में भक्ति व अद्वैत वेदान्त के भावों की अभिव्यक्ति की तथा लोक और शास्त्र का समन्वय किया उसका विस्तृत अध्ययन इस अध्याय में किया गया है। छन्दों के काव्य प्रयोग पर उत्तर भारत में चले आ रहे विमर्श में सुन्दरदास कहाँ ठहरते हैं उसकी चर्चा भी इस अध्याय में की गई है। यह अध्याय इस शोध प्रबंध का सबसे बड़ा और मुख्य हिस्सा है।

पंचम अध्याय 'सुंदरदास के समय में शिक्षा और काव्य रचना के प्रतिमान' में यह दिखाया गया है कि बनारस में सुंदरदास की विधिवत शिक्षा हुई थी और उनके ग्रंथों को 18वीं सदी के मध्य में गुजरात के कच्छ राज्य की राजधानी 'भुज' में स्थापित हुई 'ब्रजभाषा पाठशाला' में पढ़ाया जाता था। सुन्दरदास एक तरह से बनारस की शिक्षा व्यवस्था जो बहुत पारंपरिक थी, संस्कृत जिसका मुख्य माध्यम हुआ करती थी,

उसके और मध्यकाल में स्थापित हुई पाठशाला के बीच की कड़ी बनते हैं, जिस पाठशाला का मुख्य माध्यम ब्रजभाषा थी। बनारस की संस्कृत आधारित शिक्षा और भुज (गुजरात) की ब्रजभाषा आधारित शिक्षा के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से आरंभिक आधुनिक काल में शिक्षा और काव्य रचना के प्रतिमानों का अध्ययन इस अध्याय में किया गया है।

षष्ठ अध्याय 'सुंदरदास की काव्यभाषा और षट्भाषा विमर्श' में मध्यकाल में भाषाओं की व्याख्या करना और काव्य में उनके प्रयोग करने के सिद्धांतों का अध्ययन किया गया है। सुंदरदास ने संस्कृत, फ़ारसी, मारवाड़ी, पूरबी, पंजाबी, गुजराती आदि भाषाओं से शब्द लेकर अपनी काव्यभाषा की सृजनशीलता बढ़ाई। मध्यकाल में बहुत से कवि उचित सन्दर्भ के अनुसार तथा कविता की माँग के मुताबिक अन्य भाषाओं से शब्द लेते थे और इससे कविता में अनेक अर्थ भरते थे। सुन्दरदास की कविता उसी साहित्यिक परिवेश का एक उदाहरण है। यह साहित्यिक परिवेश 19वीं सदी के अंत से काव्य रचना के नए मानदंड बनने से संकुचित होता गया और उसकी जगह खड़ी बोली आधारित नए काव्य परिवेश ने ले ली। इस युग परिवर्तन में जिन लेखकों, भारतेंदु, महावीरप्रसाद द्विवेदी आदि युगपुरुषों ने जो भूमिका निभाई उनका अध्ययन भी इस अध्याय में किया गया है।

मध्यकाल का इतिहास लेखन बहुत जटिल काम है। कारण यह है कि इस काल में साहित्यिक संवेदनाएँ, भाषाएँ, विधाएँ परस्पर संवाद कर रही थीं। ऐसे में कोई एक प्रवृत्ति किसी काल-विशेष का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती। इसलिए साहित्यिक-विधाओं की निरंतरता और युग सापेक्ष नवाचारों का ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अध्ययन करना ही उचित होगा। कवि अपनी काव्य विधाओं के चयन के समय उस विधा की परम्परा के प्रति भी सचेत रहा करता था। वह उन विधाओं में युग-सापेक्ष बदलाव भी करता था। हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने के क्रम में काव्य-विधाओं के ऐतिहासिक अध्ययन के क्षेत्र में भी बहुत सम्भावनाएँ हैं, जिसकी और बढ़ने के लिए यह शोध प्रबंध एक छोटा सा प्रयास है।

यह शोध-प्रबंध इस अवधारणा के भी पुनर्मूल्यांकन की भी मांग करता है, जिसमें यह माना जाता है कि सामंती या अभिजात वर्ग की भारत की 'आरम्भिक आधुनिकता' या 'देशज आधुनिकता' में कोई भूमिका नहीं थी। राजसी अभिजात वर्ग सर्वत्र इकहरा या एक-से चरित्र –अर्थात सरलीकृत रूप से विलासी - कभी नहीं रहा है। कई राजवंश साहित्यिक अभिरुचि वाले थे और कवियों एवं भक्तों को सम्मान व संरक्षण देते थे। भक्तमालों में भक्तों को आश्रय देने वाले राजसी अभिजात वर्ग को

भी भक्त-परम्परा का हिस्सा माना गया है। इन भक्तमालों में ऐसे राजाओं की विस्तृत चर्चा आती है जिन्होंने भक्तों का आदर किया और उन्हें संरक्षण भी दिया –

लघु मथुरा मेरता भक्त अति जैमल पोषे।
टोड़े भजन निधान रामचंद हरिजन तोषे।।
अभैराम एकरस नेम नींवां के भारी।
करमसी सुरतान भगवान बीरम भूपति-ब्रतधारी।।
ईश्वर अखैराज रायमल कन्हर मधुकर नृप सरबसु दियो।
भक्तनि को आदर अधिक राजबंश में इन कियौ।।117।।[6]

देशी सामंत भी संतों का शिष्यत्व ग्रहण करते थे। सामंती संस्कृति का अपनी कविता में सबसे मुखर विरोध करने वाली मीराबाई की स्मृति को राजसी वर्ग सदियों से संजोता आया है।[7] नाभादास का उपर्युक्त पद उन्हीं मेड़ता के राजपरिवार के सदस्य जयमल की प्रशंसा करता है, जिन्होंने मीराबाई को सहायता पहुँचाई थी।[8] दादूदयाल के पहले शिष्य बड़े सुंदरदास (पूर्व नाम भीमराज) बीकानेर के राजा के भाई थे।[9] बीकानेर राजवंश अकबर का सहयोगी था, जिसमें पृथ्वीराज राठौड़ जैसे कवि हुए, जिन्हें डिंगल का सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ 'क्रिसन-रुकमणी-री वेली' लिखने का श्रेय प्राप्त है।[10] आमेर राजपरिवार के सदस्य दादू का शिष्यत्व ग्रहण करते थे। इसीलिए सुंदरदास शांतिप्रिय और भक्तों के कार्यकलापों में दखल न देने वाले राज्य की आवश्यकता

बताते हैं और फ़तेहपुर के राजसी अभिजात वर्ग तथा साहूकार वर्ग से संरक्षण भी पाते हैं।

दादूपंथी स्रोत इस बात से भरे पड़े हैं कि दादू की अकबर से मुलाक़ात करवाने में आमेर के राजघराने का बड़ा योगदान था।[11] ऐतिहासिक रूप से यह मुलाक़ात सच हो न हो, यह बात दादूपंथियों को आमेर राजपरिवार से मिली सहायता की तरफ़ इशारा करती है-

अकबर साही बुलाईया गुरु दादू को आप।
सांच झूठ ब्यौरो हुवौ तब रह्यौ नावं प्रताप।।[12]

आमेर राजपरिवार 16वीं सदी से ही गलता में रामानन्दियों को प्रश्रय देता आ रहा था जहाँ नाभादास ने रहकर अपना प्रसिद्ध भक्तमाल लिखा। आमेर और मुग़ल सहयोग से ही वृंदावन भक्ति के प्रमुख केंद्र के रूप में विकसित हुआ।[13] इसी तरह बुंदेले भक्ति की नई लहर से अछूते नहीं रहे। हरिराम व्यास (जो वृंदावन में बसे एक प्रमुख भक्त थे और उनकी कविता भक्ति-काव्य के ऐतिहासिक अध्ययन में बहुत महत्त्वपूर्ण रही है) को ओरछा में मिला सानिध्य इस बात का प्रमाण है कि बुंदेले राजा भक्त कवियों का बराबर सम्मान करते थे।[14] मुग़लों के सानिध्य में आए आमेर और बुंदेला दरबारों में हमें शुरूआती रीति कविता मिलती है। इसी तरह मारवाड़ और बीकानेर राज्यों ने देशभाषा डिंगल काव्य के उद्भव और विकास में महती भूमिका

निभाई। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि जन सामान्य में अपनी पैठ रखने वाले संतों-भक्तों, सम्प्रदायों और पंथों के साथ राजसी अभिजात वर्ग का सहयोग और टकराव वाला सम्बंध था। यह शोध-प्रबंध भक्ति के विकास में राजसी अभिजात वर्ग की भूमिका को समझने की दिशा में बढ़ाया एक छोटा-सा कदम है। हालाँकि शोध प्रबंध में कुछ ही दरबारों का अध्ययन हो पाया है इसलिए इस क्षेत्र में आगे शोध की और सम्भावनाएँ हैं।

आरंभिक आधुनिक काल (मध्यकाल) में भक्ति और रीति प्रवृत्तियाँ कैसे एक ही कवि के यहाँ मिल जाती हैं उसका प्रमुख उदाहरण सुंदरदास हैं। इस शोध-प्रबंध में सुंदरदास के काव्य का समग्रता में अध्ययन करने प्रयास किया गया है। जिसमें सुंदरदास के जीवन से जुड़े प्रामाणिक स्रोतों, जैसे राघवदास का 'भक्तमाल', जनगोपाल की 'दादू जनम लीला परची', फ़तेहपुर राज्य में मिले शिलालेख, सुंदरदास के पंथ से जुड़े स्थानों से मिले शिलालेख और स्वयं उनकी कविता की पांडुलिपियों का सहारा लिया गया है। मध्यकाल के अध्ययन के लिए पांडुलिपियों की भूमिका पर भी इस शोध-प्रबंध में प्रकाश डाला गया है। सुन्दरदास के व्यक्तित्व और कृतित्व का समग्रता में अध्ययन करने के लिये 1685 ई. में लिखी उनके काव्य की प्राचीनतम पाण्डुलिपि की सबसे बड़ी भूमिका है।[15] यह पाण्डुलिपि (जैसा कि इसकी पुष्पिका से

विदित होता है) स्वयं सुंदरदास ने अपने परलोक गमन के कुछ साल पहले तैयार करवाई थी। इनसे उनके काव्य का प्रामाणिक अध्ययन करने में बड़ी सहायता मिलती है। इस पांडुलिपि पर आधारित साहित्यिक संस्कृति की आधुनिक काल के प्रकाशन उद्योगों (print culture) पर आधारित साहित्यिक संस्कृति के साथ तुलना बड़े दिलचस्प तथ्य सामने लाती है। भारत में छापेखाने के आने से जन-समुदाय जो काव्य पढ़ता था उसे उपलब्ध करवाने में प्रकाशन भवनों की अभिरुचियों की भी बड़ी भूमिका होती थी। इन प्रकाशन भवनों में जो पुस्तकें छपती थी वे ही पाठक-वर्ग के मन में किसी कवि की एक छवि बनाती थीं। सुंदरदास का 'सुन्दरविलास' (या 'सवैया ग्रंथ') - जो अंगों में विभाजित है- अन्य संत कवियों के काव्य की तरह लगता है। बड़े प्रकाशन भवनों के यहाँ 'सुन्दरविलास' ख़ूब छपा (या कहें तो अधिकतर यही ग्रंथ छपा), जिससे सुन्दरदास की प्रमुखत: एक संत की छवि जन-मानस में बस गई।[16] प्रकाशन संस्कृति में सुंदरदास के वे ग्रंथ जिनमें वे एक आचार्य, दार्शनिक, कवि-शिक्षक के रूप में हमारे सामने आते हैं- जैसे उनका प्रमुख ग्रंथ 'ज्ञान समुद्र' - वे उतना स्थान नहीं पा सके। प्रकाशन भवन किसी कवि का छवि-निर्माण कैसे करते थे, इस क्षेत्र में और शोध की ज़रूरत बनी हुई है।

आरंभिक आधुनिक काल (मध्यकाल) के अध्ययन में सबसे ज़्यादा ज़रूरत रचनाओं के अंतरपाठ (intertextual study) की है। यानी रचनाएँ आपस में कैसे जुड़ी हुई होती हैं। रचनाओं के अंतरपाठ से ही हमें यह ज्ञात होता है कि भक्त और रीति कवि भी एक दूसरे से संवाद करते थे। पद, लोक कथाएँ, चरित कथाएँ, भक्तमाल, वार्ता साहित्य, संत-बानियाँ आपस में एक-दूसरे को कैसे प्रभावित करते थे, इसका ज्ञान हमें रचनाओं के अन्तरपाठ से मिलता है।[17] इस शोध-प्रबंध में सुंदरदास के काव्य का केशवदास, रसखान आदि के काव्य के साथ अंतरपाठ इस दिशा में बढ़ाया गया एक क़दम है। इस क्षेत्र में अध्ययन की पर्याप्त सम्भावनाएँ हैं।

आरंभिक आधुनिक काल (मध्यकाल) के अध्ययन में एक बात जिस पर सबसे अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है वह यह है कि कवि-शिक्षा के कौनसे तरीक़े उस युग में प्रचलित थे? रीति ग्रंथों का कवि-शिक्षा में क्या योगदान रहा है? इसी क्रम में सुंदरदास के ग्रंथ 'ज्ञान समुद्र' का अध्ययन किया गया है। 'ज्ञान समुद्र' के पाठक-वर्ग में संत-समुदाय तो था ही, राजसी अभिजात वर्ग भी सम्मिलित था। ऐसे ही संत शिक्षा वाले 'भक्ति के रीति ग्रंथ' अन्य सम्प्रदायों जैसे रामानन्दी, पुष्टिमार्गियों, निरंजनी, रामसनेही संप्रदाय आदि के यहाँ भी लिखे जाते थे। इस दृष्टिकोण से भी भक्ति-काव्य का अध्ययन होना चाहिए। सुंदरदास का काव्य हमें इस बात का भी प्रमाण देता है

भक्ति-काव्य के द्वारा भी औपचारिक रूप से शिक्षा दी जाती थी। सुंदरदास के ग्रंथ कच्छ राज्य की राजधानी भुज में 18वीं सदी में स्थापित हुई 'ब्रजभाषा पाठशाला' में पढ़ाए जाते थे।[18] 'ब्रजभाषा पाठशाला' के पाठ्यक्रम में मुख्यत रीति-कवि लगे थे, उनमें सुन्दरदास को स्थान मिलना उनकी कविता की उत्तर-भारत से बाहर गुजरात में प्रसिद्धि को दिखाता है। सुन्दरदास ने बनारस में जो शिक्षा अर्जित की, अद्वैत वेदान्त पर संस्कृत में हो रहे विमर्श को देशभाषा में प्रस्तुत किया वह कैसे 'ब्रजभाषा पाठशाला' के माध्यम से अन्य कवियों तक पहुँचा इस पर भी शोध-प्रबन्ध में प्रकाश डाला गया है।

सुंदरदास ने जिस ब्रजभाषा में अपना काव्य लिखा, वह एक छोटे से भौगोलिक क्षेत्र--ब्रज प्रदेश-- से निकलकर वृहत्तर उत्तर भारत की काव्य-भाषा बनी। यह ब्रजभाषा के लचीलेपन की ओर इशारा करता है कि ब्रज को हर कवि अपनी काव्य-विधा, पाठक और श्रोता वर्ग की रुचियों या ठेठ साहित्यक की माँग के अनुरूप बदलता रहता था। सुंदरदास ने भी अपनी काव्य भाषा में बराबर भाषाई प्रयोग किए हैं। वे जब दर्शन या काव्यशास्त्र पर लिखते हैं तो उनकी ब्रजभाषा संस्कृतनिष्ठ हो जाती है और जब सूफ़ियों के मुहावरे में कविता लिखते हैं तो ख़ालिस फ़ारसी और सूफ़ी तकनीकी शब्दावली का प्रयोग करते हैं। एक तरफ़ उनके 'सवैयों' तथा 'पदावली' में चलती हुई

ब्रजभाषा होती है जो इन दोनों ग्रंथों की लोकप्रियता का आधार बनता है। वहीं दूसरी तरफ़ वे पूरबी, पंजाबी, गुजराती, मारवाड़ी आदि के शब्दों का भी संदर्भ और विधा के अनुसार वे भरपूर प्रयोग करते हैं। इससे यह धारणा बलवती होती है कि ब्रजभाषा को कई रूपों में प्रस्तुत करना उस काल में काव्य रचना का प्रतिमान माना जाता था। इसीलिये भिखारीदास ब्रजभाषा को सैद्धांतिक दृष्टि से व्याख्यायित करते हुए ब्रजभाषा में 'षट्-विधि कवित' करने की बात करते हैं-

भाषा ब्रजभाषा रुचिर, कहैं सुमति सब कोइ।
मिलै संस्कृत पारस्यौ, पै अति प्रगट जु होइ।।
बृज मागधी मिलै अमर, नाग जमन भाषानि।
सहज पारसीहूँ मिले, षटविधि कवित बखानि।।[19]

सुंदरदास की काव्यभाषा उस बहुआयामी साहित्यिक-संस्कृति की ओर ध्यान खींचती है, ब्रजभाषा जिसका प्रधान माध्यम थी। यह साहित्यिक परिवेश उत्तर भारत में औपनिवेशिक काल की पूर्वसंध्या तक फलता-फूलता रहा। लेकिन आधुनिक काल में साहित्य रचना और ग्रहण के नए प्रतिमानों की स्थापना के साथ ही यह साहित्यिक परिवेश छीजता गया। उन्नीसवीं सदी में हिंदी लेखक ब्रजभाषा और उसके साहित्यिक परिवेश से स्वयं को अलगाने की कोशिश करते हैं। आधुनिक काल में ब्रजभाषा की जगह खड़ी बोली ले लेती है और नयी काव्य-विधाएँ तथा संवेदनाएँ प्रधान हो उठती

हैं। इसलिये सुन्दरदास की कविता की वर्तमान प्रासंगिता इस बात से बढ़ जाती है कि इसमें अपने समानांतर चल रही साहित्यिक और भाषाई परम्पराओं से हिन्दी कविता के सामंजस्य का ज्ञान होता है। सुन्दरदास के काल की विविधता, संवादी और समन्वयवादी प्रवृत्ति से आधुनिक समाजों को बहुत कुछ ग्रहण करने की ज़रूरत है। सुन्दरदास की कविता जाति, सुमदाय और संप्रदाय के घेरों से परे जाकर ज्ञान, दर्शन और भक्ति को जिस तरह से जन-सामान्य के लिये सुलभ बनाती है उस लोक संग्राह्य प्रवृत्ति से भी वर्तमान में बहुत कुछ सीखने की आवश्यकयता है।

सन्दर्भ तथा टिप्पणियाँ:

1. रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), *सुन्दर ग्रंथावली* (भाग-एक), किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली 1992, भूमिका, पृ. 52
2. Francoise Mallison, *The teaching of Braj, Gujarati and Bardic Poetry at the Court of Cutch,* In Sheldon Pollock, ed., Forms of Knowledge in Early Modern Asia, Duke University Press, 2011, दलपतराम डाह्याभाई (1820-1898 ई.) को गुजराती में आरंभिक आधुनिकता और आधुनिकता के मिलन बिंदु पर स्थित कवि माना जाता है। दलपतराम भुज की ब्रजभाषा पाठशाला के ही छात्र थे और इनके लेख भुज की ब्रजभाषा पाठशाला संबंधी प्रामाणिक जानकारी, पाठ्यक्रम आदि के लिए प्राचीन स्रोत हैं। पाठ्यक्रम की जो सूची दलपतराम डाह्याभाई देते हैं उसमें सुन्दरदास के 'ज्ञानसमुद्र' का महत्व इसलिये बताया गया है कि इसमें विभिन्न प्रकार के छन्द हैं। अर्थात भुज काव्यशाला में छन्दों को 'ज्ञान समुद्र' से पढ़ाया जाता होगा।
3. डॉ. सी राजेन्द्र कुमार, *रिसर्च मेथडोलोजी*, ए.पी. एच. पब्लिशिंग कार्पोरेशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2008 ई.
4. 13-14 वीं सदी से देश में सामंतवाद के गर्भ में सौदागरी पूंजीवाद के चलन से हिन्दी जाति के निर्माण की प्रक्रिया में 'बाज़ार, व्यापारी और एक जनपद की भाषा का दूसरे जनपद के नगरों में प्रसार' आदि को जातीय (नेशन) निर्माण के उपकरण बताते हुए रामविलासजी कहते हैं, "जातीय भाषा और साहित्य का निर्माणकाल आधुनिक काल है।" रामविलास शर्मा, *भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012 ई., पृ. 21
5. रमेशचंद्र मिश्र (संपादक), *सुन्दर ग्रंथावली* (भाग-एक), पृ. 99
6. नाभादास कृत *भक्तमाल,* (संपादक – अगरचंद नाहटा), तेजकुमार प्रेस, लखनऊ, 1962 ई., पृ.728, और राघवदास विरचित *भक्तमाल,* (संपादक - नारायणदास पुष्कर), श्री दादू दयालू महासभा जयपुर, संवत् 2026 विक्रमी, पृ. 750
7. माधव हाड़ा, *मीरां का जीवन और समाज (पचरंग चोला पहर सखी री),* वाणी प्रकाशन, नई

दिल्ली, 2015 ई., पृ. 14-15

8. हायदी पाउल्स, *राठौड़ी मीरा–टू नेगलेक्टेड राठौड़ कनेक्शनश ऑफ़ मीरा – जयमल मेड़तियो एंड नागरीदास*, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ हिन्दू स्टडीज़ 14, 2-3 (2010 ई.), पृ.177-200

9. डॉ. रतनलाल मिश्र, *दादूपंथी नागा समुदाय- साधना एवं साहित्य,* संत कुटीर जयपुर, 1997ई.

10. अबुल फ़ज़ल और राजस्थान के दरबारी इतिहासकार मुहतां नैणसी दोनों यह उल्लेख करते हैं कि पृथ्वीराज राठौड़ अकबर के मनसबदार थे। इनको गागरौन में एक जागीर मिली हुई थी। द्रष्टव्य, एच० बेवेरिज (अनुवादक), द *अकबरनामा आफ़ अबुल फ़ज़ल,* भाग-3, पृ.-518 तथा बद्रीप्रसाद साकरिया (संपादक), *मुहताँ नैणसी री ख्यात* (भाग-एक), राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, 1960 पृ. 256

11. विनान्द केलवर्ट (संपादक), द *हिन्दी बायोग्राफ़ी आफ़ दादूदयाल,* मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1988ई., पृ.- 125

12. शहाबुद्दीन इराकी (संपादक), रज्जबदास की सर्वंगी, ग्रंथायन प्रकाशन, अलीगढ़ 1984 ई., पृ. 247

13. द्रष्टव्य, मोनिका हॉर्ट्समेन, इन फ़ेवर ऑफ़ गोविन्ददेवजी, मनोहर पब्लिकेशन, नई दिल्ली 1999 ई.। गोविन्ददेव मन्दिर—वृंदावन और जयपुर—को मिले मुग़ल व राजपूत संरक्षण और उससे जुड़े मुग़ल शाही फ़रमानों का अध्ययन मोनिका हॉर्ट्समेन ने किया है। हॉर्ट्समेन लिखती हैं 1565 ई. राजा भारमल के कहने पर यह मुग़ल फ़रमान जारी हुआ। ब्रज का यह इलाका टोडरमल की जागीर थी जिससे 100 बीघे ज़मीन इस मन्दिर के पुजारी गोपालदास के नाम जारी हुई। यह सब वृंदावन में गौड़ीय सम्प्रदाय के इस मन्दिर और उससे जुड़ी हुई गतिविधियों को बढ़ाने में मुग़ल और राजपुतों की दिलचस्पी को दिखाता है। गोविन्ददेव की मूर्ति को रामसिंह के राज्यकाल (1667- 89 ई.) में जयपुर लाया गया और वहाँ के गोविंददेव मंदिर में प्राण-प्रतिष्ठित किया गया। जयपुर के लोकजीवन में गोविन्ददेव की प्रतिष्ठा इस बात से लगा सकते हैं कि जयपुर-वासी बात-बात पर गोविन्ददेवजी को साक्षी बना देते हैं और उन्ही की कसम खाते हैं।

14. ऐलिसन बुश, *पोइट्री ऑफ़ किंग्स,* ओ. यू. पी., न्यूयॉर्क, 2011 ई., पृ.47, रीति-कवि केशवदास को संरक्षण देने वाले बीरसिंहदेव ने भक्ति के प्रधान कवि हरिराम व्यास को भी प्रश्रय दिया था और 1618 ई. में ओरछा में उनकी समाधि का निर्माण करवाया था।

15. सुन्दरदास के काव्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण पांडुलिपि संवत् 1742 विक्रमी (1685 ई.) की है जिसे सुन्दरदास की शिष्य परम्परा के ही महन्त गंगारामजी (मृत्यु 1920 ई.) से पुरोहित हरिनारायण शर्मा ने प्राप्त किया था। हरिनारायण शर्मा की 'सुन्दर ग्रंथावली' इसी प्राचीन पांडुलिपि पर आधारित है जो सुन्दरदास ने स्वयं अपने जीवन काल में तैयार करवाई थी। हरिनारायण शर्मा लिखते हैं- *"पाठकों को विदित हो कि – (१) मूल प्राचीन गुटका स्वामी सुन्दरदासजी ने अपने सामने ही अपनी देख रेख में स्थान फ़तहपुर में अपने वैश्य शिष्य वा सेवक लेखक रूपादास से लिखवाया था। जो मिती आषाढ़ शुक्ला ६ शनिवार संवत विक्रमी १७४२ को पूर्ण हुआ। लेखक ने अन्त में लिखा है-* ***संवत १७४२ वर्षे आषाढ़ सुदि षष्टी शनिवासरे पोथी लिखायितं स्वामी सुन्दरदासजी लिखितं रूपादास महाजन फतहपुर मध्ये पोथी स्वामी सुन्दरदासजी को ग्रंथ सम्पूर्ण।*** *स्वामी सुन्दरदासजी के ये ग्रंथ ८९ वें वर्ष में लिखे जा चुके थे। इसके ३ ही वर्ष पीछे वे सांगानेर में शरीरत्यागी हो गये थे।"* पुरोहित हरिनारायण शर्मा (संपादक), *सुन्दर ग्रंथावली* (भाग-एक की भूमिका), राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता, 1936 ई., पृ. 8-9, सुन्दरदास के जीवनकाल में तैयार हुई यह पांडुलिपि--जिसमें उनके लिखे लगभग सभी ग्रंथ समाहित है— 'प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान-जयपुर' के विद्याभूषण (हरिनारायण शर्मा) संग्रह में संरक्षित है जिसे देखने और पढ़ने का सौभाग्य हमें भी मिला है।

16. उलरिका स्टार्क, *एन ऐम्पायर ऑफ़ बुक्स- द नवलकिशोर प्रेस एंड द डिफ़्युज़न ऑफ़ प्रिंटेड वर्ल्ड इन कॉलोनियल इंडिया,* परमानेंट ब्लेक, रानीखेत 2008 ई., पृ. 397, सुन्दरदास के काव्य को पहली बार नवल किशोर प्रेस ने छापा था। इस प्रेस ने केवल 'सुन्दरविलास' को ही स्थान दिया था, जिसका पहला संस्करण नवल किशोर प्रेस से 1882 ई. में निकला।

17. जॉन एस. हॉली, ए स्टॉर्म ऑफ़ सोंग्स, हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 2015 ई., पृ. 295-312

18. निर्मला आसनाणी, *कच्छ की ब्रजभाषा पाठशाला और उससे संबद्ध कवियों का कृतित्व,*

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1996 ई., पृ. 99-100, पाठशाला के पाठ्यक्रम पर दलपतराम डाह्याभाई ने अपने लेख '**भुजमां कविताशाला विषे**' में जिन 28 ग्रंथों का उल्लेख किया है उनमें भक्ति-साहित्य से सुन्दरदास के सुन्दरविलास और ज्ञान समुद्र का ही उल्लेख है। बाद में 'रामचरितमानस' को भी जोड़ा गया।

19. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (संपादक), *भिखारीदास ग्रंथावली* (भाग-दो), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी 1957 ई., पृ. 5